COHERENCE – The Multidisciplinary Research Journal
Volume No: 9, Issue No: 1, Year: 2018 (January-June)
PP: 31-34
ISSN: 0976-5301
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 7.85)
Journal Website www.coherencejournal.in

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्राचीन भारतीय राजशास्त्र की प्रासंगिकत

डॉ० प्रियम्बदा कुमारी मिश्रा

असिस्टेण्ट प्रोफेसर (साहित्य)

श्री गणेश गिरिवरधारी संस्कृत महाविद्यालय, बख्तियारपुर (पटना)

प्राचीन राजशास्त्र की प्रासंगिकता मुल्य सापेक्ष रहने से हर काल के लिए प्रशस्त थी, है और रहेगी। इस परिपेक्ष्य में जब हम प्राचीन राज्य की विवेचना करते हैं तो पाते हैं कि प्राचीन वैदिक काल में शासन सम्बन्धी विभिन्न संविधान प्रचलित थे जिनके द्वारा राज्यों का शासन कार्य सम्पन्न किया जाता था। राजशास्त्र से सम्बन्धित अनेकों पारिभाषिक शब्दों का उल्लेख ऋग्वेद में हुआ है। वैदिक काल के समाज में राजशास्त्र का इतना अधिक महत्त्व था, कि देवताओं के सामर्थ्य, सत्ता और शक्ति को समझाने के लिए उनकी तुलना राजा से की जाती थी, प्राचीन राजशास्त्र बहुत ही लोकप्रिय थी।

यजुर्वेद के गण तथा गणपति शब्दों को राजनैकि अर्थ में लिया जा सकता है, क्योंकि उसके आगे के मन्त्रों में सेनानी, रथी, क्षत्रा आदि शब्दों का उल्लेख है ये शब्द भी स्पष्टतया राजनैतिक जीवन से सम्बन्धित हैं।

ऐतरेय ब्राह्मण में आठ प्रकार के संविधानों का उल्लेख मिलता है, तथा साम्राज्य, भौज्य, स्वराज्य, वैराज, पारमेष्ठ्य, महाराज्य और आधिपत्य ये संविधान भारत के विभिन्न भागों में वर्त्तमान थे।[1]

भारत में राजशास्त्र का प्रयोग अति प्राचीन काल से चलता रहा है। वैदिक काल के राज्यों में पारस्परिक सम्बन्धों के बारे में हमारा ज्ञान सीमित है। महाकाव्य तथा पौराणिक गाथाओं में राजशास्त्र की गतिविधियों के अनेकों उदाहरण मिलते हैं। प्राचीन भारतीय राजशास्त्र में विचार का केन्द्र बिन्दु राजा था, अतः प्रायः सभी राजनीतिक विचारकों में मनु, याज्ञवल्वय, कौटिल्य, अश्वघोष, बृहस्पति, भीष्म, विशाखदत्त आदि ने राजाओं के कर्त्तव्यों का वर्णन किया है। स्मृति में तो राजा के जीवन तथा उनके दिनचर्या के नियमों तक का वर्णन मिलता है। भारतीय राजशास्त्र तथा राजा के संबंधों का बोध कराते हैं। श्रुति के पश्चात्य राज व्यवस्था में स्मृति ही मान्य है। स्मृति ग्रन्थों में कहा गया है कि अर्थशास्त्र और धर्मशास्त्र में विरोध होने पर धर्मशास्त्र को प्रधानता मिलेगी।

मनुस्मृति के सप्तम् अध्याय में राजशास्त्र में समाहित राजधर्म का प्रतिपदन किया गया है–

''राजधर्मान प्रवक्ष्ययामि यथा वृत्तो भवेन्नृपः।
सम्भवश्च यथा तस्य सिद्धश्चपरमा यथा।।[2]

मेधा तिथि के अनुसार राजा का धर्म है कि एक–एक करके राज्यों पर विजयाभियान करके शत्रु राजा को अपने राज्य में मिलाना और इस प्रकार एकाधिपतय के लिए अपना राज विस्तार करना :–

''सर्वोदण्डजितो लोको दुर्लभो हि शुचिर्नरः।

दण्डस्य हि भयात्सर्वं जगjोगायकल्पतो।।[3]

हमारे स्मृति ग्रन्थों में वस्तु स्थिति यह है कि सम्पूर्ण विश्व को दण्ड व्यवस्था के बल पर ही जीता जा सकता है। सन्मार्ग की ओर अग्रसर किया जा सकता है। स्वाभाविक रूप से पवित्र, सदाचारी मनुष्य दुलर्भ ही होता है।

मनु महराज ने राजा की दैवी उत्पत्ति के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं, तदनुसार परमात्मा ने राजा का निर्माण किया। समय इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, चन्द्रमा, वरूण और कुबेर आदि देवों के अंशों को ग्रहण किया, इसलिए उसमें इनके गुण एवं प्रभाव के दर्शन होते हैं।

© Copyright @ Authors

ISSN: 0976-5301
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 7.85)
Journal Website www.coherencejournal.in

राजा को राजनीति में काम आने वाली विद्या आन्वक्षिकी त्रयी, वार्त्ता और दण्ड नीति का गहन अध्ययन वेदज्ञ विद्वानों एवं राजनीति कुशल गुरूओं से करना चाहिए। इतना ही नहीं उसे कामज तथा क्रोधज व्यसनों से सदैव दूर रहना चाहिए। आचार्य मनु ने दुर्व्यसन एवं मृत्यु में से व्यसन को अधिक कष्टकारी बताया है।[4]

याज्ञवल्क्य जी ने धर्म के मूल पाँच माने हैं–श्रुति, स्मृति, सदाचार अपने को प्रिय लगने वाली वस्तु और संकल्प से उत्पन्न इच्छा। इस कथन से स्पष्ट हो जाता है, कि राजशास्त्र के लिए स्मृति का ही प्रमाण सबसे श्रेष्ठ है।

राजशास्त्र में राजा के कर्त्तव्य राजधर्म में समाहित राजधर्म संसार को वैसे ही नियन्त्रण रखता है, जैसे लगाम घोड़े को नियंत्रण में रखती है। प्राचीन भारत में राजतन्त्र ही सबसे अधिक प्रचलित था। राज्य और शासन के अध्ययन को राजशास्त्र कहा गया है। महाभारत के शांति पर्व में भीष्म ने कहा है कि सब धर्मों में राजधर्म प्रधान है–

''सर्वेधर्मा राजधर्मा प्रधानाः सर्ववर्णाः पाल्यामाना भवन्ति।

सर्वस्त्यागो राजधर्मेषु राजस्त्यागं धर्म चाहुरग्रन्थ पुराणम्।।[5]

अर्थात् इसी से सब पापों का परिपालन होता है। राज धर्म में ही सब त्याग देखे गये और उसमें ही सब दीक्षा कही गई है। सब विद्याएँ राजधर्म में ही आ जाती है। राजा की आवश्यकता के पीछे भी राष्ट्र सुरक्षा एवं शांति की भावना ही निहित थी।

प्राचीन भारतीय शासन पद्धति का अवलोकन करने पर ज्ञात हुआ है, कि जहाँ भारतीय विचाराकों ने राज तन्त्रात्मक स्वछन्दतावाद को नहीं आने दिया। राजनीति विज्ञान के क्षेत्र में याज्ञवल्क्य का अपना एक विशिष्ट दृष्टिकोण रहा है।[6]

याज्ञवल्वय स्मृति में राजधर्म प्रकारण आचाराध्याय का अन्तिम प्रकरण है। इसमें बताया गया है कि राजशास्त्र में राजधर्म व्यवस्था क्या है?

एकाकी रूप से राज्य का कोई भी कार्य नहीं हो सकता है। अतः याज्ञवल्वक्य जी ने मुख्य रूप से सात अंग माने हैं –

''स्वाम्यमात्मा जनो दुर्ग कोशो दण्डस्तथैव च,

मित्राण्येताः प्रकृतयोः राज्यं सप्तांगमुच्यते।[7]

इन सातों में मित्र का स्थान महत्त्वपूर्ण माना गया है। सुवर्ण और भूमि के लाभ से भी मित्र की प्राप्ति अधिक लाभप्रद मानी गई है क्योंकि सच्चा मित्र हित अहित की बातें सुनाता है।

याज्ञवल्क्य के अनुसार राजा की किसी योजना की सफलता दैवी एवं मानवीय प्रयत्नों दोनो पर निर्भर है। किन्तु भाग्य कुछ नहीं है जिस प्रकार एक पहिये से रथ नहीं चलता, उसी प्रकार बिना मानवीय प्रयत्न या कर्म के भाग से कुछ सम्भव नहीं है।

1. राजा के कर्त्तव्य :–

प्रजा की रक्षा करना राजा का एक बड़ा दायित्व था कर्त्तव्य भ्रष्ट होने पर राजा पाप का भागी माना जाता था पाप शब्द का प्रयोग बहुत बड़े अपराध के लिए प्रयुक्त किया जाता है–

''ये राष्ट्राधिकृतास्तेषां चारैर्ज्ञात्वा विचेष्टितम्।

साधुन्यसम्मानये द्राजा विपरीतांश्च घातयेत्।।

उत्कोचजीविनो द्रव्यहीनकृत्वा विवासयेत्।

सद्यानमानसत्कारा †श्रोत्रियान्वासयेत्सदा।।[8]

© Copyright @ Authors

ISSN: 0976-5301
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 7.85)
Journal Website www.coherencejournal.in

राजा ने राज्य की रक्षा के लिए जो अधिकारी नियुक्त किये हैं, उनके आचरण की परीक्षा गुप्तचरों द्वारा करवाकर जो सदाचारी हों, उन्हें राजा सम्मानित करे और विपरित कार्य करने वाले को दण्ड दे। रिश्वत लेकर अपनी जीविका चलाने वालों का धन छीनकर उन्हें अपने राज्य से निकाल देना चाहिए। शास्त्रज्ञों, श्रोत्रियों को दान, मान और सत्कार देकर अपने राज में वास दे।[9]

2. गोपनीय कार्य का महत्व :–

याज्ञवल्क्य ने सभी प्रकार के मन्त्र और मन्त्रणा को गोपनीय रखने पर अधिक बल दिया है। सिद्धि की प्राप्ति तक मन्त्र गुप्त रखने पर ही फल देने वाला होता है। उन्होंने कहा है–

''मन्त्रमूलं यतो राज्यं तस्मान्मन्त्रं सुरक्षितम्।

कुर्माद्यथाऽस्य न विदुः कर्मणामा फलोदयात्।।[10]

राज्य के सुप्रबन्ध का मन्त्र ही मूल आधार है। अतः मन्त्र को युक्तियों द्वारा सुरक्षित रखना चाहिए। बुद्धिमान व्यक्ति को फल प्राप्ति तक मन्त्र प्रकाशित नहीं करना चाहिए।

याज्ञवल्क्य के अनुसार साम, दान, भेद और दण्ड ये चार प्रकार के उपाय हैं–

''उपायाः सामदानं च भेदो दण्डस्तथेव च।

द्वैधीभावं गुणानेतान्यथा वत्परिकल्पयेत्।।[11]

व्यवहार कुशल एवं सच्चा शासक सदा आपनी शक्ति तथा बुद्धि का उपयोग करके शासन चलाता है, ऐसा करने से प्रजा वर्ग सुखी और उन्नति की ओर लगी रहती है।

इन चार उपयों के अनुसार कार्य करने वाला राजा नीतिज्ञ माना जाता है और अपने कार्य में सफल रहता है।

1. साम – मधुर भाषण द्वारा शत्रु मित्र के साथ व्यवहार करना।
2. दान – बहुमूल्य सुवर्णादि को देकर समय के अनुकूल कार्य करनां
3. भेद – दोनों उपयों में जब कार्य सिद्ध न हो तब परस्पर दो राज्यों में बैर उत्पन्न करके भेद उपाय है।
4. दण्ड – धन हरण कर लेना, राज्य पर आक्रमण कर लेना मार डालना ये चार उपाय राज्य संचालन के लिए भी उपयुक्त है।

राजशास्त्र (अर्थशास्त्र) का निर्वचन करते हुए कौटिल्य ने कहा –

''मनुष्याणां वृत्तिरर्थः मनुष्यवती भूमिरित्यर्थः,

तस्याः पृथिव्या लाभपालनोपायः शास्त्रम् अर्थशास्त्रमिति।।

अर्थात् 'अर्थ' शब्द मानवों की गतिविधि या मानव – युक्त पृथ्वी (राज्य) का बोधक है। उसे प्राप्त करने और पालन (रक्षा) करने के उपाय के रूप में जो नियम है वही अर्थशास्त्र है।[12] कौटिल्य का ही प्रथम वचन है कि –

''पृथिव्या लाभेपालने च यावन्त्यर्थ शस्त्राणि पूर्वाचार्यैः प्रस्थापितानि प्रायशस्तानि संहृत्यैकमिदमर्थ शास्त्रंकृतम्।।

दण्डनीति शब्द इस शास्त्र की कठोरता का निर्देशक है, राजशास्त्र बहुत व्यापक परिधि प्रदान करता है।

कौटिल्य का उद्देश्य एक ऐसे विराट् साम्राज्य की स्थापना करना था, जिसके अतुल बल वैभव के समक्ष किसी को भी सिर उठाने का साहस न हो, फिर भी उसकी नीति के अन्तराल में लोक कलयाण की एक व्यापक भावना विद्यमान थी, जिसका उल्लंघन उसने कभी भी नहीं किया और सम्भवतः यही एक भारी कारण रहा है कि कौटिल्य की निरंकुश नीति में प्रजातन्त्री विचारों का आश्चर्यमय समन्वय था।

© Copyright @ Authors

ISSN: 0976-5301
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 7.85)
Journal Website www.coherencejournal.in

राजा के प्रमुख कर्त्तव्यों में यज्ञ, प्रजापालन, न्याय, दान, शत्रु–मित्र से उचित व्यवहार, विभिन्न विषयों के प्रकाण्ड विद्वानों को उनके उपयुक्त स्थानों पर नियुक्त करना।

प्राचीन भारत की एक राजत्व शासन प्रणाली को दृष्टि में रखकर स्वभावतः होना तो यह चाहिए था कि सर्वसत्तामान शासक। राजा ही सम्पूर्ण राजसत्ता का एकाधिकारी व्यक्ति होता, किंतु न्यायशास्त्र तथा अर्थशास्त्र विषयक ग्रन्थों में जो नीति नियम निर्धारित हैं, उनको देखकर ही यह बात स्पष्ट हो जाती है कि राजा की स्थिति एक वेतन भोगी सेवक से बढ़कर कुछ न थी, और राज परिवार का वेतन (वृत्ति) निर्धारित था, जो कि देश आयु एवं देश की स्थिति पर निर्भर था।

राजशास्त्र के अनुसार राजा राज्य रूपी वृक्ष का मूल है, मंत्री परिषद् उसका धड़ या स्कन्द है, सेनापति उसकी शाखाएँ, सैनिक उसके पल्लव हैं, प्रजा उसके पुष्प हैं देश की सम्पन्नता उसके फल हैं और समस्त देश उसका बीज है।[13] हमारे पुराणों में भी कहा गया हैः–

अत्रापि भारत श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने,

यतोहि कर्मभूरेषा यतोऽन्या भोगभूमयः।।[14]

हे महामुने, इस जम्बूद्वीप में भी भारत श्रेष्ठ है क्योंकि यह भारतभूमि, कर्मभूमि है और अन्य भोग्य भूमि है। हमें हमारी भूमि के प्रति प्रेम, ऐतिहासिक परम्पराएँ अनादि काल से ही विरासत में मिली हैं तथा एक सर्वनिष्ठ भविष्य की आशा के कारण जीवित रहती है। अतः हम अतीत का स्मरण कर, वर्त्तमान के प्रति जागरूक रहते हैं और भविष्य के लिए कर्म करते हैं।

स्त्रोत एवं सन्दर्भा :–

1. वेद कालीन समाज और संस्कृति पृ0–92, संस्करण 2005 डॉ0 विमला देवी राय, कला प्रकाशण वाराणसी–229005
2. मनुस्मृति–711, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 221001
3. वही–7122
4. मनुस्मृति (मन्वर्थमुक्तावली तात्पर्य दीपिका सहित द्वितीय–सप्तमश्च अध्याय) पृ0 – 128
5. महाभारत शांतिपर्व
6. याज्ञवल्क्य स्मृति का समीक्षात्मक अध्ययन पृ0–173, डॉ0 उषा गुप्ता, प्रकाशक ईस्टर्न बुक लिंकर्स, 5825, न्यू चन्द्रवल जवाहर नगर दिल्ली–71
7. याज्ञवल्वय स्मृति 1/353
8. वही 1/3 38/339
9. याज्ञवल्वय स्मृति का समीक्षात्मक अध्ययन पृ0–176
10. याज्ञवल्वय–1/334
11. वही–1/346–347
12. संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ0–690 डॉ0 उमाशंकर शर्मा, चौखम्भा भारती प्रकाशन, वाराणसी।
13. कौटिल्य अर्थशास्त्र पृ0–1, वाचस्पति गौरोला, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी।
14. वही, भूमिका पृ0–24, 25, 26।

© Copyright @ Authors